ग्रामीण भारत में नागरिक सक्रियताः शासकीय सेवाओं के लिए दावे करना
Citizen Action in Rural India: Claiming Services from the State

गैब्रिएल क्रक्स-विसनर
Gabrielle Kruks-Wisner
July 2, 2012

भारत के विकासमान शासकीय दायरे और पहुँच में हाल ही के वर्षों में काफ़ी बढ़ोतरी हुई है, जिसका संकेत भारत के ग्रामीण नागरिकों के जीवन और आजीविका में सुधार लाने के लिए चलाए गए विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों से मिलता है. उदाहरण के लिए, राज्यों और केंद्र सरकार द्वारा शासकीय स्तर पर स्वास्थ्य, शिक्षा, बुनियादी ढाँचे, खाद्य सुरक्षा,आवास, रोज़गार और अन्य क्षेत्रों के लिए नियमित रूप में अनेक कल्याणकारी ''योजनाएँ'' बनाई (और फिर से बनाई) जा रही हैं. राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन,सर्व शिक्षा अभियान और महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी स्कीम (मनरेगा) इनमें से कुछ विशालकाय योजनाएँ हैं, जिनके माध्यम से बेशुमार वस्तुएँ, सेवाएँ और पैसा ग्रामीण भारत में बहाया जा रहा है.

साथ ही भारत को ''लोकतंत्र को संरक्षण देने वाला देश'' माना जाता है. यही कारण है कि नागरिकों के जीवन में सुधार लाने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है, जिसमें वस्तुओं और सेवाओं के वितरण में अधिकारियों का काफ़ी हद तक अपना विवेकाधिकार है. सभी सरकारी स्तरों पर भारी भ्रष्टाचार फैला हुआ है, जिसकी हाल ही में जनता के बीच और मीडिया कवरेज में जबर्दस्त चर्चा होती रही है. यही कारण है कि लोगों में यह धारणा बनने लगी है कि भारतीय शासन व्यवस्था अपने नागरिकों की अधिकाश ज़रूरतों को पूरा करने में लगातार विफल होती रही है. ऐसी स्थितियों में शासन व्यवस्था का एक ऐसा धूमिल चित्र उभरता है, जो कहीं बहुत दूर है और पहुँच से बाहर है.

और इसीलिए सवाल उठता हैः भारत में शासन पर कौन दावे करता है? मेरा शोध-कार्य ग्रामीण राजस्थान पर आधारित है, जिसमें 400 से अधिक साक्षात्कार हैं, और 105 गाँवों के 2,000 से अधिक गृहस्थ लोगों का सर्वेक्षण है. इन सभी लोगों से यही सवाल किया गया है और यह छानबीन की गई है कि नागरिकों की ओर से सार्वजनिक वस्तुओं और सेवाओं की माँग कैसे की जाती है? इस प्रकार के दावे करना बहुत महत्वपूर्ण है, लेकिन स्थानीय और रोज़मर्रे के मामलों में, जहाँ नागरिक शासन से रूबरू होते हैं, राजनीतिक भागीदारी के स्वरूप पर कम ही अध्ययन किया गया है. ग्रामीण भारतीय नागरिकों और शासन के बीच के धूमिल संबंधों को देखते हुए हम व्यापक असंतोष के साथ-साथ दावों के घटिया स्तर की अपेक्षा भी कर सकते हैं. परंतु वस्तुस्थिति यह है कि अधिकांश सर्वेक्षणों से यही रिपोर्ट मिलती है कि ये लोग निश्चय ही सेवाओं की माँग करने के लिए ही सरकारी अधिकारियों के संपर्क में आते हैं. ये ऊँचे-ऊँचे दावे कुछ हद तक परस्पर विरोधी भी होते हैं, क्योंकि सेवाओं की डिलीवरी के रिकॉर्ड ठीक नहीं होते. इनमें नागरिकों के व्यवहार के अनुरूप ही अधिकारी अपने विवेकाधिकार का उपयोग करते हैं. इन स्थितियों में दावों के पीछे ज़रूरत और उम्मीद दोनों ही रहती हैं. नागरिक विभिन्न प्रकार की अनिवार्य सेवाओं के लिए शासन पर निर्भर रहते हैं. जैसे-जैसे सार्वजनिक संसाधनों का दायरा फैलता जाता है और इन संसाधनों की जानकारी उन लोगों के संपर्क

में आने से बढ़ती जाती है जिन्होंने इन्हें प्राप्त कर लिया है, लोग अधिक से अधिक उन उम्मीदों (कितनी ही धूमिल क्यों न हों) के कारण जिनसे उन्हें लाभ हो सकता है, दावे करने में लग जाते हैं.

बहुत कम ही ऐसा होता है कि जब दावा करना कोई सरल कार्य रहा हो. बजाय इसके, लोग अलग-अलग तरीके अपनाते हैं, सीधे और किसी मध्यस्थ के ज़रिए. अधिकांश लोग (लगभग दो-तिहाई लोग) गाँव स्तर के अधिकारियों (पंचायत के सदस्य) से सबसे पहले संपर्क करते हैं, लेकिन इस सीधे संपर्क के लिए भी उन्हें ऊबड़-खाबड़ रास्तों से गुज़रना पड़ता है. इस संपर्क के लिए भी उन्हें गैर-सरकारी कर्मचारियों और जोड़-तोड़ करने वाले व्यक्तियों, जातिगत नेताओं, बड़े-बुज़ुर्गों, स्थानीय संघों और सिविल सोसाइटी के संगठनों सहित अनौपचारिक संस्थाओं का सहारा ही लेना पड़ता है. वास्तव में सर्वेक्षण के आधे नमूनों से तो यही रिपोर्ट मिलती है कि शासन से कोई भी सेवा प्राप्त करने के लिए किसी न किसी दलाल से ही संपर्क करना पड़ता है. महत्वपूर्ण बात तो यह है कि सीधे और मध्यस्थ के ज़रिए किए जाने वाले उपायों को मिलाकर ही अक्सर मिले-जुले, विविध प्रकार के और जटिल दावों के ''नाटक'' किए जाते हैं.

इन अलग-अलग प्रकार के दावों से क्या होता है और इन्हीं दावों से स्थानीय नागरिकों और शासन के बीच संबंध बनते हैं? अधिकांशतः पश्चिम में रची गई बहुत-सी विद्वत्तापूर्ण कृतियों में यह अनुमान किया गया है कि राजनीतिक भागीदारी उस सामाजिक और आर्थिक हैसियत पर निर्भर करती है जहाँ ऊँची सामाजिक हैसियत के अधिक संपन्न लोग शासन से सहयोग लेते हैं. परंतु भारत में गरीब और नीची जाति के लोग राजनीति में बढ़-चढ़कर भाग लेते हैं. मतदान-पेटी से आगे बढ़कर यही पैटर्न लोगों के दावों तक पहुँचता है; भले ही कोई व्यक्ति शासन से दावा करे या नहीं, इसे न तो विकास के स्तरों से समझा जा सकता है और न ही व्यक्ति की धन-संपत्ति और जाति संबंधी सामाजिक-आर्थिक हैसियत से.

बजाय इसके मेरा सुझाव है कि व्यक्ति सेवाओं के लिए भले ही माँग कैसे भी करे, यह उसके सामाजिक और व्यावसायिक ताने-बाने और उसकी जानकारी और उसके अपने संपर्कों पर निर्भर करता है. व्यक्ति के नजदीकी समुदाय और बस्ती के अपने घनिष्ठ संबंधों तक फैले कमज़ोर ''संपर्क सूत्रों'' के ज़रिए और उन संपर्क-सूत्रों के ज़रिए जो जाति, संप्रदाय, वर्ग या अन्य सामाजिक दलों के ज़रिए ही व्यक्ति को राज्य के बारे में अधिक सूचनाओं और विचारों के साथ-साथ संभावित संपर्कों की व्यापक और विविध जानकारी भी मिलती है.

उदाहरण के लिए उत्तर भारत की एक औरत पर्दे में रहती है, जो अपने घर या पड़ोस से बाहर नहीं निकलती है. वह न तो वह कभी सरकारी अधिकारी का सामना कर सकती है और न ही अपने नज़दीकी परिवार से आगे निकलकर किसी दलाल से मिल सकती है या राज्य के बारे में या सर्विस डिलीवरी के बारे में कोई जानकारी ही जुटा सकती है या फिर दलालों के व्यापक नेटवर्क के ज़रिए कोई दावा ही कर सकती है. इसके विपरीत जो औरत घर से बाहर निकलकर काम पर जाती है, वह आसानी से भिन्न-भिन्न जातियों, वर्गों और पृष्ठभूमि के स्त्री-पुरुषों से मिल सकती है और उनसे बात कर सकती है. कोई व्यक्ति जो रोज़गार और शिक्षा के लिए गाँव से बाहर निकल कर यात्रा करता है,

वह व्यापक और विभिन्न प्रकार के लोगों से मिलता है. व्यक्ति के अनुभव का दायरा जितना बड़ा होगा और उसकी जानकारी का स्रोत जितना बड़ा होगा, वह शासन तक पहुँचने के लिए संपर्क बनाने वाले अधिकारियों या दलालों का सामना करने में अधिक सक्षम होगा. दूसरे शब्दों में, विभिन्न लोगों और पृष्ठभूमियों से जुड़े लोगों के "सामाजिक-देशिक" संपर्क ही उनके लिए अवसरों और दावा करने के लिए आवश्यक जानकारी को जुटाता है.

मुझे लगता है कि वे ही लोग दावे कर सकते हैं,जो विभिन्न श्रेणी के गाँवों और व्यक्तिगत स्तर की उन विशेषताओं को, जो लोगों में होती हैं जो गाँवों से आगे बढ़कर और जाति और वर्ग से ऊपर उठकर उन्हें नियंत्रित करते हैं और इसके लिए सीमित नेटवर्क में निहित उपायों को अपनाने के बजाय बहुत ही अलग तरह के तरीके अपनाते हैं और वे लोग जो अलग-अलग परिवेश में परवरिश पाते हैं और जो लोग बहुजातीय परिवेश में काम करते हैं और गाँव से बाहर भी यात्रा करते हैं, वे ही सीधे तौर पर या किसी मध्यस्थ के ज़रिए दावे करते हैं.

भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगों से मिलने और अलग-अलग जगहों की यात्रा से ही ग्रामीण भारत में परिवर्तन की लहर आ सकती है. निश्चय ही यह प्रक्रिया धीमी और विषम होगी, लेकिन इससे ही अंतर्जातीय संबंध बनेंगे और शहर और गाँव की सीमाएँ टूटेंगी. जनसंख्या में वृद्धि और ज़मीन की कमी, भूमि और श्रमिकों के अनुपात की गिरावट में प्रतिबिंबित होने लगी है, जिसके कारण स्थानीय कृषि संबंधी रोज़गार के अवसर घटने लगे हैं और यही कारण है कि लोग उन तमाम नए क्षेत्रों की ओर उन्मुख होने के लिए विवश हो रहे हैं जिनमें जातिगत मानदंड चल नहीं सकते या फिर गाँव से बाहर निकलकर रोज़गार की तलाश में जुट गए हैं. ऐसे समय में परंपरागत रूप में हाशिए पर आए वर्गों को बहुजातीय व स्त्री-पुरुषों के मिले-जुले परिवेश में काम करने के लिए अवसर प्रदान करने के उद्देश्य से महिलाओं और समाज की नीची जातियों और जनजातियों के लिए पंचायत की सीटों के आरक्षण जैसे संस्थागत हस्तक्षेप शुरू किए गए हैं. ऐसे और अन्य तरीकों से लोग उन तमाम व्यापक संपर्क-सूत्रों से जुड़ सकते हैं जो उन्हें ऐसी सूचनाओं और संपर्कों से जोड़ते हैं जिनकी मदद से वे दावा करने में सक्षम होते हैं और दावा करने के लिए प्रेरित भी होते हैं.

ये निष्कर्ष ग्रामीण भारत में लोकतांत्रिक प्रथाओं पर सवाल उठाते हैं और यह उत्तर खोजने में हमारी मदद करते हैं कि आखिर क्यों कुछ ही लोग और अन्य लोग नहीं, सेवाओं के लिए शासन से संपर्क करने के लिए अपनी आवाज़ बुलंद करते हैं. सभी सामाजिक और स्थानिक दायरों में विविध स्रोतों से जुड़ना नागरिक गतिविधियों और भागीदारी के लिए आवश्यक है. नीति संबंधी परिप्रेक्ष्य से यह सुझाया जा सकता है कि अलग-अलग जातियों का आपसी समन्वय (महिलाओं और नीची जाति के लोगों के लिए पंचायत की सीटों का आरक्षण या बहुजातीय या बहुवर्गीय समन्वय के लिए गैर-सरकारी संस्थाओं के साथ मिलकर काम करना) नागरिकों और शासन के गठजोड़ को बढ़ाने के लिए बहुत आवश्यक है. इसी तरह से सक्रिय नागरिकता के लिए उपयुक्त स्थितियों के निर्माण के लिए आवश्यक जानकारी प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जा सकती है. यही भारत में चल रहे सूचना के अधिकार का मूल बिंदु है.

साथ ही इस अध्ययन से यह पता चलता है कि इसका अंधकारमय पक्ष भी उतना ही सच है और इससे यह लोकतांत्रिक कमी भी उजागर होती है कि सेवाएँ उपलब्ध कर पाने में सरकार की लगातार विफलता के कारण ही नागरिक ऐसे दावे करने के लिए क्यों बाध्य होते हैं.

गैब्रिएल क्रक्स-विसनर मैसाशुएट्स इंस्टीट्यूट ऑफ़ टैक्नोलॉजी में पीएच.डी के विद्यार्थी हैं.

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार
<malhotravk@hotmail.com>